

वसंतराव नाईक शासकीय कला व समाज विज्ञान संस्था, नागपुर

“महिला कथाकारों की आत्मकथाओं का तुलनात्मक विश्लेषण”

सारांश

हिन्दी की अधिकांश स्त्री आत्मकथाएं कथाकारों द्वारा ही लिखी गयी हैं, इसलिए शिल्प की दृष्टि से इन आत्मकथाओं में उपन्यास की विधा का कथात्मक शिल्प देखा जा सकता है। चन्द्रकिरण सौनरेक्सा की 'पिंजरे की मैना', मन्नू भंडारी की 'एक कहानी यह भी', प्रभा खेतान की अन्या से अनन्या ' मैत्रेयी पुष्पा की 'कस्तूरी कुण्डल बसै' और 'गुड़िया भीतर गुड़िया', कृष्णा अग्निहोत्री की 'लगता नहीं दिल मेरा' और 'और और औरत', चंद्रकिरणसौनरेक्सा की 'पिंजरे की मैना', कुसुम अंसल की 'जो कहा नहीं गया', शीला झुनझुनवाला की 'कुछ कही कुछ अनकही' और सुशीला टाकभौरे की 'शिकंजे का दर्द' इत्यादि सभी आत्मकथाएं औपन्यासिक शिल्प वाली आत्मकथाएं ही हैं। संभवतः इसीलिए इन सभी आत्मकथाओं में पठनीयता की दृष्टि से अदभुत आकर्षण है। अनुभव—जगत की भिन्नता तथा सीमित जीवन—अवसरों की गहराई कहें या फिर लम्बे समय तक जीने की बाध्यता या विवशता उनके लेखन में देखा जा सकता है, जिसकी कल्पना भारतीय पुरुष साहित्यकारों के लेखन में तो नहीं ही की जा सकती। इन आत्मकथाओं से स्त्री—मन की वह दुनिया सामने आती है, जिसे बहिरमुखी और सामाजिक होने के कारण पुरुष—मन प्रायः सोच और देख ही नहीं पाता। आत्मकथाओं की यह दुनिया जीवन के छोटे—छोटे संवेदनात्मक प्रसंगों, विवरणों, वृत्तान्तों और प्रायः उपेक्षणीय समझे जाने वाले मानवीय सम्बन्धों और रिश्तों की भावपूर्ण दुनिया है। बाहरी संसार से बचता और बचाता, कई—कई दृश्य—अदृश्य मोर्चोंपर एक साथ जूझता, घरेलू वास्तविकताओं और समस्याओं का एक अलग प्रबन्धन इतिहास लिए जो पारिवारिक और व्यक्तिगत होते हुए भी समाज को सही समय पर सही ढंग से कुछ महत्वपूर्ण प्रदान करने की सृजनात्मक क्षमता भी रखता है।

हिन्दी महिला आत्मकथाओं में यह आरोप लगाया जाता है की स्त्री और 'मुक्ति'— ये दोनों शब्द सदियों से परस्पर एक-दूसरे का पूरक बनने के लिए छटपटाते रहे हैं । किन्तु ऐसे अनेक कारण हैं जिन्होंने इस पूरकता की राह में सदैव रोड़े अटकाए । स्त्री के संदर्भ में मुक्ति का विषय कठिन भी है और सरल भी । सैद्धांतिक रूप में यह सदैव सरल जान पड़ा है किन्तु प्रायोगिक रूप में अत्यंत कठिन । किसी हद तक प्रतिबन्धित भी । हिन्दी आत्मकथा के आरंभिक समय में पुरुष वर्चस्व साफ-साफ दिखाई पड़ता है । एक कारण यह भी था कि हिन्दी आत्मकथा में स्त्री का वही स्वरूप उभर कर आया जो पुरुष-प्रधान समाज में पुरुषों द्वारा सोचा, समझा और रचा जाता है । इसीलिए प्रारम्भिक दौर की आत्मकथाओं के स्त्री पात्र अतिवादी आदर्श की चादर ओढ़ कर खड़े दिखाई देते हैं । अब यह तर्क देना भी उचित प्रतीत नहीं होता है कि उस समय के समाज और आज के समाज में जमीन-आसमान का अन्तर था । स्त्री के प्रति सामाजिक सोच न कल बदली थी और न पूरी तरह से आज बदली है । आज भी स्त्री को श्वस्तुश् और श्भोग्याश् मानने वालों की कमी नहीं है । आज वे औरतें मुक्ति के लिए छटपटा रही हैं और उनकी मुक्ति देहमुक्ति से अलग नहीं हैं, क्योंकि स्त्रियों का प्रथम बंधन देह से प्रारंभ होता है । इसीलिए आत्मकथाओं में भी देहमुक्ति का विषय बनना स्वाभाविक है ।

स्त्री और दलित आत्मकथाओं से यह भी पता चलता है कि ये लोग अपने अतीत से कैसे मुक्त हो रहे हैं । इनका अतीत में जाना तीन काम करता है, पहला — स्त्री और दलित के अतीत के यथार्थ को सामने लाता है, दूसरा — इस यथार्थ से मुक्त करता है । तीसरा — वे जिन चीजों को सबसे ज्यादा प्रतीकात्मक रूप में व्यक्त करती हैं वह है श्रम । श्रम के विविध रूपों के चित्रण के जरिए वे श्रम को जीवन लाइफ लाइन के रूप में चित्रित करती हैं । साथ ही जीवन व्यतीत करने के लिए जो चीजें जीवन में आती हैं उनमें खेत, रसोईघर, घरेलू काम, बच्चे पालना इत्यादि का समावेश है । इनका चित्रण अंततः प्रतीकात्मक रूप में साहित्य में जीवनकी अभिव्यक्ति है । इसमें जीवन के प्राचीन रूपों से लेकर मध्यकालीन रूपों

को सहज ही देखा जा सकता है । इसके कारण आत्मकथा में प्रामाणिकता आती है ।

आदिवासी, स्त्री और दलित की आत्मकथाओं में अनेक स्थानों पर इस तरह की लोकल भाषा मिलती है जो आम जीवन में सुनाई नहीं देती, लेकिन आत्मकथा में है, वह उनके जीवन में भी है । वहां ऐसे भाषिक प्रयोग मिल जाएंगे जो सामान्य भाषा में इस्तेमाल नहीं किए जाते । इनका विशिष्ट अर्थ है जो दलित या स्त्री के संदर्भ में ही इस्तेमाल किया जाता है । गिली देलुत्ज एवं फेलिक्स गुइतारी ने इसे " मीनार लैंग्वेज" यानी वर्चस्ववादी भाषा कहा है । इसकी इन दोनों आलोचकों ने काफ़का की भाषा के संदर्भ में " काफ़का: टुवर्ड ए मीनार लिटरेचर " (1975) में इस अवधारणा की चर्चा की है । यह ऐसी भाषा है जो इडियम की अस्मिता के वर्चस्ववादी रूप को सामने लाती है। इसके आमफहम अर्थ को सामान्य जीवन में खोजना मुश्किल है । फलतः यह मुख्यधारा के विमर्श को पटरी से उतार देती है ।

स्त्री, दलित और आदिवासी अल्पसंख्यक हैं और इसी नाते वे हाशिए पर हैं । ये लोग जब आत्मकथा लिखते हैं तो वे हाशिए की संस्कृति बनाते हैं । आमतौर पर हाशिए के लोगों को गैर-महत्वपूर्ण माना जाता है । यह बार- बार कहा गया है कि हाशिए के लोगों का साहित्य मुख्यधारा के साहित्य की कोटि में नहीं आता । अब साहित्य की कोटि में स्त्री साहित्य और महिला साहित्य ने भी अपना स्थान ग्रहण करना शुरू किया है । यह ऐसा साहित्य है जिसका अपना क्षेत्र नहीं था, साहित्य में कोई स्थान नहीं था । समाज में कोई स्थान नहीं था । लेकिन यह सीधा राजनीतिक साहित्य है । सवाल यह नहीं है कि स्त्री साहित्य या दलित साहित्य को साहित्य में जगह मिली या नहीं ? सवाल यह है कि यह साहित्य पाठक को साहित्य और राजनीति के बारे में सोचने के लिए मजबूर करता है या नहीं ? दलित और स्त्री साहित्य की भाषा इसी अर्थ में प्रचलित वर्चस्ववादी भाषा से भिन्न होती है । भिन्न भाषा में ही वे भिन्न संसार पेश करते हैं । इसे वैकल्पिक भाषा भी कह सकते हैं । इसकी समूची रणनीति इस बात से तय होगी कि लेखक, स्त्री और दलित के यथार्थ का कितनी गहराई में जाकर चित्रण करना चाहता है ।

कई बार हिन्दी कथा संसार में लेखिकाओं के संदर्भ में देहमुक्ति को उनके लेखन की बोलखानेस ठहरा दिया जाता है जिससे विषय की गंभीरता की सरासर अवहेलना हो जाती है । प्रश्न यह उठता है कि स्त्री की देह मुक्ति का क्या आशय है? और, हिन्दी महिला आत्मकथा लेखन में देह मुक्ति का क्या स्वरूप है? क्या हिन्दी में लेखिकाओं द्वारा जो दैहिक संदर्भ प्रस्तुत किए जा रहे हैं वे अनुपयोगी हैं ? क्या वे अपरिष्कृत हैं? क्या वे अनावश्यक हैं ? क्या इस प्रकार के संदर्भों से बच कर उन विषयों पर विस्तृत दृष्टि डाली जा सकती है, जिनके जन्म में देह आधारभूत तत्व है? या फिर ऐसे विषयों को अछूता छोड़ दिया जाना चाहिए क्योंकि ऐसे विषयों पर लेखन से कुछ परम्परागत मानक टूटते हैं ? वे बहुत सारे प्रश्न हैं जो महिला आत्म कथा लेखन की चर्चा आते ही सिर उठाने लगते हैं ।

हिन्दी महिला आत्मकथाओं में जीवन के अनेक महत्वपूर्ण पक्षों को सार्वजनिक किया है । पाठकों को उन कक्षों में प्रवेश की अनुमति दी है जिनमें रहकर उन्होंने नितान्त अपने दुख, सुख और प्रेम को जिया है । प्रेम पत्रों का प्रकाशन इसी तारतम्य की एक कड़ी है । डायरी को प्रकाशित करा कर भी अपने निजी को सार्वजनिक किया गया है । आत्मकथा इसी प्रकार की एक विधा है जिसमें व्यक्ति, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, अपने जीवन की, अपने अनुभवों की पर्तें खोलता है । इसकी शैली शजो जैसा है, वैसे ही की रहती है । इसीलिए लेखिकाओं द्वारा अपनी आत्मकथा का प्रकाशन कराए जाने पर अच्छा खासा बवाल मच जाता है । अनेक प्रश्न उठ खड़े होते हैं कि क्या उन्हें ऐसा लिखना चाहिए था ? क्या उन्हें फलां के साथ अपने अंतरूसंबंधों को उजागर करना चाहिए था ? क्या यह एक लेखिका के लिए सामाजिक दृष्टि से उचित है ? क्योंकि अंततः वह एक स्त्री है ।

आत्मकथा या जीवनी को हमें अस्मिता साहित्य की कोटि में रखकर विचार करना चाहिए । अभी तक हम इसे अस्मिता के दायरे में रखकर नहीं सोच रहे । किसीमहिला लेखक की आत्मकथा को हम अस्मिता के आधार पर देखने को तैयार हो जाते हैं लेकिन किसी गैर-दलित लेखक की आत्मकथा को अस्मिता के आधार

पर देखने में असमर्थ रहे हैं । मसलन ओमप्रकाश बाल्मीकि और महिला आत्मकथाओंकी आत्मकथाएं अस्मिता की कटेगरी में रखकर पढ़ी जानी चाहिए ।

आत्मकथा मूलतः अस्मिता साहित्य है । इसके साथ ही जनजाति, अनुसूचित जाति, लिंग और वर्ग का साहित्य अस्मिता साहित्य है । किसी आदिवासी या स्त्री या महिला लेखकों की आत्मकथाओं में साझा सांस्कृतिक रूप, साझी सामाजिक परिस्थितियां और संघर्ष के साझे मुद्दों के दर्शन होते हैं । ये मुद्दे हैं— छूत-अछूत, शिक्षा में भेदभाव, श्रमविभाजन में भेदभाव, कृषि- शोषण, जमीन के अधिकार, ऊँच-नीच के सवाल, वर्ण और जातिप्रथा, सेक्स, शारीरिक शोषण, पति-पत्नी में असमानता, स्त्री की अधिकारहीनता, मातहत भावबोध आदि । इन सभी में एक साझा तत्व है कि ये सभी स्वयं की पहचान को बनाने के लिए संघर्ष करती नजर आती हैं ।

आज जिस तरह आत्मकथा को सम्मान की नजर से देखा जाता है वह एक तरह से इन लेखकों की सांस्कृतिक क्षति की सामाजिक स्वीकृति है । उनका जो सांस्कृतिक स्थान समाज में छीना गया था उसे वे इसके जरिए हासिल करते हैं । वे अदृश्य थे और अदृश्य होना उनकी क्षति थी, आत्मकथा उनको दृश्य बनाती है, उनकी उपस्थिति का एहसास कराती है और इस तरह वे अपना खोया हुआ स्थान हासिल करते हैं । महिला या स्त्री या आदिवासी द्वारा आत्म कथा का लिखना साहित्य और समाज दोनों के लिए एक बड़ी उपलब्धि है । इसके अलावा आत्मकथा से साहित्य की प्रचलित विधागत मान्यताओं के साथ-साथ मसलन लिंग, भाषा, जातिवाद, धर्म आदि के पूर्वाग्रह टूटते नजर आ रहे हैं । अर्थात् स्त्री से उसके जीवन में यही अपेक्षा की जाती है कि वह देह और आत्मा को अलग-अलग दो खांचों में रख कर जिए । यदि आत्मकथा में लेखिका संवेदनशील है, तो वह इस आरोपित अपेक्षा के जाल को काटकर उन्मुक्त उड़ान भरने का प्रयत्न करती है और फिर जब भोगे गए यथार्थ का चित्रण 'आत्मकथा' के रूप में पाठकों के सामने आता है तो समाज में हलचल मच जाती है । फिर भी कुछ लेखिकाओं ने सामाजिक दबाव की चिन्ता किए बिना अपने जीवन के उन पक्षों को आत्मकथा के रूप में

सबके सामने लाने का साहस किया जिसे समाज छुप-छुप कर तो पढना चाहता है लेकिन खुल कर नहीं । ठीक वैसे ही जैसे कोई छात्र पाठ्य-पुस्तक के बीच दबाकर अपने रुचि की कोई पुस्तक पढ़ता हो ।

मैत्रेयी पुष्पा गुड़िया भीतर गुड़िया में लिखती हैं कि जिन्दगी जो थी तन मन से घिरी हुई । मेरे लिए उसको दो भागों में बांट कर देखना कठिन था । जब शरीर और मन को काट कर देखने की बात होती, मैं बहुत उदास और खिन्न हो जाती । इस दृष्टि से यानि मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के लिए मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा ' गुड़िया भीतर गुड़िया' दिलचस्प तथ्य उपलब्ध कराती है । डाक्टर पति पुरुष-वर्चस्व की परम्परागत भूमिका में है, इस बात से अनभिज्ञ कि जो विवाह उसने किया है, वह बचपन से ही पिता से वंचित युवती से है । पुरुष-नियन्त्रण से पूरी तरह मुक्त एक स्वाधीन स्त्री-प्रधान परिवार । मैत्रेयी को माता-पिता द्वारा पुरुष-प्रधान समाज के पति-पत्नी के रिश्ते की कोई स्मृति ही नहीं है । पति अपनी पारिवारिक पृष्ठभूमि के कारण उसी रिश्ते को पाना और जीना चाहता है । लेखिका इस पति को समझने के लिए मनोवैज्ञानिक रूप से अयोग्य है । फलतः असुरक्षा का शिकार पति उसे नियन्त्रण में बनाए रखने के लिए हाफता और थकता रहता है । पूरी आत्मकथा में मैत्रेयी के लिए पति और दाम्पत्य एक दमनकारी कुण्ठित कर देने वाली सत्ता की पराधीनता के रूप में सामने आता है । उनका अचेतन विद्रोह और प्रतिशोध की उस सीमा तक पहुंचते-पहुंचते ठिठक कर रह जाता है, जहां स्त्रियाँ प्रेम और मुक्तिके नाम पर अपने तानाशाह पति से बदला लेने के लिए दूसरे पुरुष की बाहों में समा जाती हैं । अपनी ही देह को दूसरों को सौंपकर कि मैं इसकी संपत्ति दूसरे पुरुष को सौंपकर उसे वंचित कर रही हूँ। इस तरह कुछ महिला साहित्यकारों की आत्मकथाएं असामान्य मनोविज्ञान की विश्लेषण सीमा में आने के कारण इस दृष्टि विशेष से भी महत्वपूर्ण हैं ।

कृष्णा अग्निहोत्री की आत्मकथा (दो खण्डों में) 'लगता नहीं है दिल मेरा' तथा और.....और औरत ने उस सुगबुगाहट की याद ताजा करा दी जो तसलीमा नसरीन की आत्मकथा के प्रकाशित होने पर साहित्य जगत में हुई थी ।

हिन्दी की स्त्री आत्मकथाओं में चन्द्रकिरण सौनरेक्सा की आत्मकथा 'पिंजरे की मैना' कथावस्तु के बहुस्तरीय एवं बहुकालिक यथार्थ के कारण जीवन के विविध रंगों को अपने में समेटे हुए है। प्रस्तुत आत्मकथा सहज, मासूम और इमानदार अभिव्यक्ति लिए हुए है। चन्द्रकिरण की आत्मकथा अन्तहीन, अनुत्तरित संभावना और संवेदनात्मक विस्तार देती है। एक अन्तहीन आर्थिक तंगी और उससे जूझते हुए जीतते रहना इस कृति को भारतीय मध्यवर्गीय जीवन की महाकाव्यात्मक एवं औपन्यासिक स्त्री-आत्मकथा में बदल देता है।

प्रभा खेतान ने अन्या से अनन्या में 'परिस्थितियों' का व्यापक तौर पर वर्णन किया है। इसी के आधार पर हमें मारवाड़ी समाज, प्रेम, अविवाहित जीवन से उपजी विविध समस्याओं, का ज्ञान होता है। स्त्री आत्मकथा पहले उपलब्ध नहीं थी, अब लिखी जा रही है, आज इसे साहित्य की अकादमिक दुनिया और साहित्यिक आलोचना का हिस्सा बनाया जाना चाहिए। अभी तक हम जिस भाषा के अभ्यस्त रहे हैं वह मर्द भाषा रही है। इसमें पाठक और विषय के बीच अंतराल रहा है। विषय और श्वश के बीच भी अंतराल रहा है। मर्द भाषा में बोलने, लिखने और सोचने की हमारी आदत सैंकड़ों साल पुरानी है। मर्द भाषा वह है जो हमारे ऊपर से गुजर जाती है। यह इकतरफा भाषा है, इस भाषा में बोलने वाले उत्तर की प्रतीक्षा नहीं करते और न यही महसूस करते हैं कि उनकी बात सुनी जा रही है या नहीं। जबकि स्त्री भाषा की विशेषता है कि उसे उत्तर चाहिए। यह संवाद है। इसकी जड़ों में शब्द हैं जो एक साथ ही करवट बदलते हैं। स्त्री भाषा संप्रेषण नहीं है बल्कि संबंध है। संबंध ही है जो जोड़ता है। इसकी शक्ति बांटने वाली नहीं है बल्कि बांधने वाली है। इस भाषा को आप हृदय से महसूस कर सकते हैं।

स्त्री भाषा के लक्षणों को आप अन्या से अनन्या में सहज ही देख सकते हैं। इस किताब के भाषिक सौंदर्य का यह परम तत्व है कि लेखिका बिना किसी संकोच और दुविधा के एक विषय से दूसरे विषय, एक शहर से दूसरे शहर की ओर अपने आख्यान को खोलती रहती है। यहां उत्तर आधुनिक परिदृश्य को सहज ही

देखा जा सकता है । उनकी भाषा में सहजता है, गतिशीलता है, और लोच है । इसी अर्थ में यह आत्मकथा व्यक्तिगत होते हुए भी राजनीतिक है । भाषा में फिसलन ही इसकी शक्ति है । इस भाषा में जब आप फिसलते हैं तो गिरते हैं, फिर उठते हैं, संभलते हैं, फिर चलते हैं और फिर कहते हैं । चलना, गिरना और संभलना यहीं पर इसका स्त्री भाषिक सौंदर्य है । मजेदार बात यह है कि प्रभा अपनी छाया (डा.सर्गाफ से प्रेम) का पीछा करती है और ज्योंही छाया को पकड़ने की कोशिश करती है, छाया गायब हो जाती है । छाया के पीछे भागना और उसका गायब हो जाना ही इसके सौंदर्य का आधार है ।

मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी आत्मकथात्मक पुस्तकों के माध्यम से अपने जीवन के उन पक्षों को सामने रखा जिसके बारे में आम पाठक सोच नहीं सकता था कि वे किस संघर्ष से गुजर कर इस ऊंचाई तक पहुंची हैं । इन सबसे परे, कृष्णा अग्निहोत्री की आत्मकथा है । यद्यपि उनके दुख-सुख तसलीमा से अलग हैं फिर भी वे अनुभव कहीं न कहीं एक जैसे हैं जो भावनात्मक शोषण के हैं । इसमें स्वनामधन्य संपादकों द्वारा भावनात्मक-शोषण किए जाने का उल्लेख है । महसूस यह हुआ कि इस पर उस ढंग से प्रतिक्रिया नहीं हुई जैसी कि तसलीमा नसरीन पर हुई थी । जबकि शायद यह भारतीय साहित्यकारों, संपादकों की सोच में आए खुलेपन का प्रमाण है ।

धीरे-धीरे यह तथ्य स्वीकार किया जाने लगा है कि लेखिका एक स्त्री होने के साथ-साथ पुरुषों की भांति एक मनुष्य भी है जिसका अपना एक जीवन है, अपने दुख-सुख हैं और जिन्हें गोपन रखने अथवा उजागर करने का उसे पूरा-पूरा अधिकार है । उसके भीतर वे सभी संवेग होते हैं जो एक आम स्त्री में होते हैं, अन्तर मात्र यही होता है कि आम स्त्री उन संवेगों को व्यक्त करने का साहस नहीं संजो पाती है जबकि आत्मकथा लिखने वाली स्त्री साहस के साथ सब कुछ सामने रख देती है- जो जैसा है, वैसा ही । जैसा कि अपनी आत्मकथा के संबंध में कृष्णा अग्निहोत्री का कहना है कि, श्मेरा बयान नंगा रहे... एकदम प्राकृतिक....साफ!

अहसासों की पर्ते कुछ इस तरह उघड़ती जाएं कि उनकी बारीक रेखाएं भी पढ़त से बाहर न रहें ।

महिला आत्मकथाकारोंने अपनी आत्मकथा को लिखते समय यह बताने की कोशिश की है कि उनके व्यक्तित्व का निर्माण कैसे हुआ? साथ ही प्रगतिशील साहित्य और संस्कृति का हिंदी में सृजन कैसे हुआ ? हिन्दी साहित्य और हिन्दी जाति के विकास की प्रक्रिया क्या है ? ये तीन बातें हैं जिनको वे आत्मकथा के बहाने संप्रेषित करना चाहती हैं । इसमें संस्मरण बिखरे पड़े हैं । वे संस्मरण की शैली में लिखती हैं और सजगता के साथ क्रमबद्धता को बनाए रखती हैं ।

आत्मकथा में अनेक लोग हैं जो लेखक के जीवन की सफलताएं पढ़ना चाहते हैं । उनकी सफलताएं एक लेखक की सफलताओं के रूप में आती हैं । इसमें लेखन, साहित्य और राजनीति के व्यापक अनुभवों को पेश किया जाता है । महिला आत्मकथाआने इसी परिप्रेक्ष्य में व्यक्तित्व निर्माण में सफलताओं की कर्म और कला, राजनीति, दर्शन आदि की बड़ी भूमिका का व्यापक स्तर पर जिक्र किया है । लेखक के रूप में एक आंदोलनकारी लेखिका, एक ऐसी लेखिका जो जो विवाद पैदा करे, आलोचना के नए प्रश्नों को उठाए और अपनी जाति पर गर्व करे ।

महिला आत्मकथाओं की आत्मकथा को पढ़कर यह लगता है कि उनका समाज के सभी वर्गों से मिलना/जुलना तो होता था, लेकिन प्रभावित वे अपने मन से ही होती थीं । वे अन्य को प्रभावित करती थीं । उनकी आत्मकथा में यह तत्व उभरकर बहुत ही कम आया है कि वे किससे प्रभावित हुईं अथवा उन पर प्रच्छन्नतः किसका प्रभाव था ।

अच्छी बात यह है कि अब लेखिकाओं का संकोच और बंधन टूटने लगा है । उनके भीतर की स्त्री, मुखर होकर साहित्य में अपने जीवन के सच को दृढ़ता के साथ उजागर करने लगी है । हिन्दी साहित्य में स्त्री और उसकी आत्मकथा के अस्तित्व को एक साथ स्वीकार करने का वातावरण जन्म ले चुका है और उसमें हिन्दी की लेखिकाओं की आत्मकथाओं की कड़ियों का जुड़ते जाना स्त्री से उसके

समूचे अस्तित्व के साथ स्वीकार किए जाने जैसा है । एक बौद्धिक सकारात्मक बोध की तरह । जिस प्रकार साहित्य की विभिन्न विधाओं ने अपना-अपना स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित किया है, उसी तरह स्त्री की आत्मकथा भी अपना स्वतंत्र अस्तित्व प्राप्त कर लेगी, यह साहित्य में स्त्री की सक्रिय उपस्थिति तथा समस्त स्त्रियों के अस्तित्व को जानने, समझने में सहायक सिद्ध होगी ।

भूमंडलीकरण के इस दौर में आत्मकथाओं में नए किस्म का व्यक्तिवाद नजर आ रहा है । यहां लेखक नए रूप में अपनी खोज करता है । वह लिखता है, अपने अतीत को बताने के लिए,लेकिन बताता है अपने व्यक्तित्व के रूपान्तरण को । यहाँ वह यह भी दर्शाता है कि वह ग्लोबल परिवर्तनों के साथ खुद भी बदल रहा है । लेखिका अपनी जीवनी को नया रूप और दिशा देने में सक्षम है । यह ऐसा लेखन है जो अपने सांस्कृतिक प्रतीकों की स्वयं खोज करता है तथाभूमंडलीकरण में व्यक्ति की अस्मिता और सांस्कृतिक रूपों का वो सर्जक भी है ।महिला आत्मकथाओं में जीवनशैली का चित्रण मिलता है ।जो आज ग्लोबलाईजेशन काअहम हिस्सा है । महिलाकी जीवनशैली के साथ –साथ एक प्रतिरोधी व्यक्तित्व भी सामने आता है ।

यथा स्थितिवाद का बागी तेवरों के साथ निषेध करने वाले तत्व मासकल्चर में खूब मिलेंगे । जिस तरह मासकल्चर को बागी हीरो पसंद आते हैं, उनके संवादों को हम उद्धृत करते हैं, ठीक वैसे ही दलित और स्त्री आत्मकथाओं में भी प्रतिरोधी लेखक को पसंद किया जाता है । उनके चुभते संवाद पसंद आते हैं । उनका अविश्वास पसंद आता है । उनका इन चीजों का महिमामंडन पसंद आता है । इस तरह की प्रस्तुतियों की खूबी है कि आप उनकी उपेक्षा नहीं कर सकते । चूंकि ये बदले हुए समय की तस्वीरें हैं, इनमें चीजें बदलती नजर आती हैं । वे अपनी अस्मिता को खोजते हैं, नया रूप देते हैं । ये तस्वीरें प्रेरक का काम भी करती है ।

हिन्दी में ऐसी बहुत कम स्त्री-आत्मकथाएं हैं जो पाठकों में अन्याय के प्रति संवेदनात्मक बोध और क्षोभ जगा पाती हैं । इस दृष्टि से चन्द्रकिरण सौनरेकसा (पिंजरे की मैना), मैत्रेयी पुष्पा (कस्तूरी कुण्डल बसै) मन्नू भडारी (एक कहानी यह

भी), मैत्रेयी पुष्पा (गुड़िया भीतर गुड़िया), प्रभा खेतान (अन्यासे अनन्या) और कृष्णा अग्निहोत्री (लगता नहीं दिल मेरा) की आत्मकथाएं क्रमशरू उतरते क्रम में ठीक और प्रभावी लगीं । स्त्री-विमर्श के साथ मनुष्य-जीवन के सभी पक्षों व विषयों का उचित समायोजन हो, क्योंकि स्त्री-पक्ष और स्त्री-चिन्तन का सतत पुनरवाचन एक ऐतिहासिक जरूरत है। इसमें संदेह नहीं कि समकालीन स्त्री-चिन्तन, लिंग-संवेदना, स्त्री-प्रकृति, स्त्री-यौनिकता, देह-विमर्श, सांस्कृतिक संक्रमण,आदि विषयों के समायोजन में हिन्दी महिला आत्मकथाओं का सराहनीय प्रयास है । आज प्रचलित सभी विमर्शों में स्त्री-विमर्श अपने सर्वव्यापी वैचारिक महत्त्व के कारण सबसे महत्त्वपूर्ण है । इसका ताल्लुक संसार की आधी आबादी से है । वह आबादी जिसकी रचनात्मक के सक्रिय योगदान से यह दुनिया अभी तक वंचित रही आई हैय और जिसके योगदान को रेखांकित करने की कोई प्रविधि पुरुष की मनीषा ने अभी तक ईजाद नहीं की है ।

आत्मकथा को कल तक पश्चिमी विधा माना जाता था, वैसे ही जैसे उपन्यास को माना जाता था, हिन्दी की स्त्री लेखिकाओं की आत्मकथाओं के आने से स्त्री साहित्य का संसार ही नहीं साहित्यिक आलोचना का संसार भी बदला है । स्त्री आत्मकथा इसलिए नहीं लिखती कि उसे निजी जीवन की बातें बतानी हैं और पाठकों को पढ़ना है, स्त्री आत्मकथा पाठ नहीं बल्कि आन्दोलन है । स्त्री आत्मकथा आन्दोलन की तरह है, यह सतह पर राजनीतिक आंदोलन की तरह नहीं है, बल्कि व्यवहार में किया गया आंदोलन है। स्त्री आत्मकथा का निशाना विचार नहीं मनुष्य का व्यवहार होता है । स्त्री आत्मकथा के सामाजिक प्रभावों के बारे में हमने कभी सोचा ही नहीं, क्योंकि हमारे यहां स्त्री आत्मकथा लिखी ही नहीं गयी, अब लिखी जा रही है तो इसके सामाजिक प्रभावों के बारे में भी सोचना चाहिए । स्त्री आत्मकथा के प्रभाव का क्षेत्र सामाजिक संस्कार,आदतें और एटीट्यूट होते हैं । वह अपने अनुभव से बदलने की सीख देती है ।

मजेदार बात यह है कि हमारे यहां पुरुष के 'स्व' का काफी लंबा चौड़ा साहित्यिक आख्यान मिलेगा, प्रत्येक विधा में इस मर्द आख्यान की महिमा का वर्णन

मिलता है, किंतु स्त्री के 'स्व' पर स्त्री के नजरिए से न तो कभी लिखा और न सोचा ही गया है । स्त्री का 'स्व' पुरुष के 'स्व' से भिन्ना होता है । पुरुष के 'स्व' को देखने के जो पैमाने प्रचलन में हैं, वे स्त्री के 'स्व' को उद्धाटित करने में हमारी मदद नहीं करते, पुरुष के लिए 'स्व' एक विषय है, जबकि स्त्री के लिए 'स्व' विषय नहीं है, पाठ नहीं है । बल्कि उसकी अस्मिता है, लिंगीय पहचान है, अनुभूति है । पुरुष के यहां विषय बोलता है, व्यक्ति बोलता है । वस्तुगतता पर जोर होता है । पुरुष अपनी आत्मकथा में आत्मस्वीकृति (कनफेशनल मोड़) की पध्दति का इस्तेमाल करता है, उसका अकादमिक महत्व भी होता है । जबकि स्त्री के यहां ऐसा नहीं होता, स्त्री के यहां आत्मकथा का पांडित्य प्रदर्शन से कोई संबंध नहीं है । स्त्री को वस्तुगत प्रस्तुति से चिढ़ है, वस्तुगत प्रस्तुति के नाम पर साहित्यिक परंपरा में हमेशा स्त्री की अभिव्यक्ति को ही कुचला गया है । अथवा उसे प्रस्तुति योग्य ही नहीं समझा गया । स्त्रीवादी साहित्य परंपरा में आत्मकथा का सचेत रूप से विकास किया गया है, उनके यहां स्त्री आत्मकथा को गंभीरता से लिया जाता है । अतः आत्मकथा लेखन का सचेतन प्रयास होना चाहिए कि स्व के साथ सांस्कृतिक जन-जीवन को समग्रता के साथ ग्रहण कर समष्टि चिन्तन को व्यापक रूप दिया जाए और महिला आत्मकथा लेखन ने इसमें उल्लेखनीय भूमिका निभाई है ।

डॉ. रेणु बाली ,

अध्यक्ष - हिन्दी विभाग ,

वसंतराव नाईक शासकीय कला व समाज विज्ञान संस्था, नागपुर.

e-mail : renubaliindia@rediffmail.com